International Journal for Multidisciplinary Research (IJFMR)
E-ISSN: 2582-2160 ● Website: www.ijfmr.com ● Email: editor@ijfmr.com

पर्यावरणीय शिक्षा के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

डॉ. अजय कुमार गोविन्द राव

Assistant Professor, B.ED

सारांश
प्रस्तुत अध्ययन अत्यन्त उपयोगी तथा महत्वपूर्ण है। इसके द्वारा वर्तमान पर्यावरण सम्बन्धी सभी भंयकर समस्याओं का सरल एवं सहज हल निकाला जा सकता है। भारतीय ऐतिहासिक दार्शनिक परम्परा में निहित पर्यावरणीय शिक्षा के तत्व हमें प्रकृति के अनुरूप चलने की शिक्षा देती है। ग्रीन हाउस प्रभाव, ओजोन क्षरण, जनसंख्या वृद्धि जैसी भौतिक व जैविक पर्यावरणीय समस्याओं तथा अलगाव, असहिष्णुता, हिंसा, लिव– इन–रिलेशनशिप, मानव मूल्यों का ह्रास जैसी सामाजिक व सांस्कृतिक पर्यावरणीय समस्याओं का अकाट्य समाधान भारतीय दार्शनिक परम्परा में सन्निहित है। विकासवादी अंधी संस्कृति मानव को विनाश की ओर ले जा रही है। विश्व समुदाय को इन पर्यावरणीय समस्याओं की जानकारी देने तथा उनके निराकरण के उपायों से अवगत कराने के लिए इस अध्ययन तथा अनुकरण किए जाने की महती आवश्यकता है। इसके अध्ययन व अनुकरण से पुनः प्रकृति और मानव के बीच मर्मस्पर्शी तादात्म्य और दृष्टिकोण विकसित किया जा सकेगा, तभी प्राणी जगत् को असमय काल–कवलित होने से बचाया जा सकेगा।

मुख्यशब्द – पर्यावरण, शिक्षा, वैदिक, वेदान्त, सांख्य, योग, बौद्ध दर्शन, ऐतिहासिक

पर्यावरण की अवधारणा बहुत प्राचीन है। भारतीय मनीषियों ने इस अवधारणा का मूल्यांकन हजारों वर्ष पूर्व किया था। प्रकृति और जीव के अंतर्संबंधों का जन–जन को बोध कराने के लिए विविध प्रतीकों के रूप में इन्हें धर्म, सामाजिक नियम और आचरण में समाहित कर दिया था। यहीं कारण है कि हजारों वर्ष तक यह संबंध मित्रवत् चलता रहा। लेकिन आधुनिकता के आवेश में पुरानी परंपरा और आचरण को नकार दिया गया, इससे प्रकृति और जीव के संबंध बिगड़ने लगे और बाध्य होकर सोचना पड़ा कि ऐसा क्यों घटित हो रहा हैं। पर्यावरण संकट बहुत तेजी से गहराता जा रहा है। आज पूरा विश्व यदि किसी समस्या को लेकर चिंतित है तो वह पर्यावरण की समस्या हैं। विकास की अंधी दौड़ में मनुष्य को यह ज्ञान तक नहीं हुआ कि वह विनाश की ओर भी तेजी से भाग रहा है। ऊर्जा की अंधाधुध खपत, वनों की बेशुमार कटाई, अनायास बढ़ती जनसंख्या, तेजी से फैलता हुआ प्रदूषण और पृथ्वी के संसाधनों का निर्मम शोषण आदि ने प्रकृति और मनुष्य के बीच का सारा संतुलन गड़बड़ा दिया हैं। प्रकृति पर विजय की लालसा ने मनुष्य को इतना निष्ठुर बना दिया कि वह उसके विनाश पर ही तुल गया – कालीदास की तरह, जिस टहनी पर बैठा था, उसे ही काटने लगा।

मानव जीवन की कुछ आधार भूत वस्तुओं यथा वायु, जल, मृदा आदि की गुणवत्ता में ह्रास ने यह सोचने के लिए बाध्य किया है कि पर्यावरण का आक्रमण परिस्थितियों को बिगाड़ रहा है। यदि पारिस्थितिकी इस तरह नष्ट होती रही तो संपूर्ण जैव जगत का जीवन संकटमय हो सकता है और अंततः महाविनाश भी हो सकता है। स्पटतः पारिस्थितिकी गुत्थियों को समझना और उनके समाधान के लिए उपाय ढूँढ़ना आज की सामयिक आवश्यकता है। आधुनिकता के नाम पर मनुष्य ने अपनी भौतिक स्वार्थ की पूर्ति के लिए पर्यावरण पर लगातार चोट पहुँचाई, पर्यावरण की अवमानना उसकी आदत सी बन गयी। प्रकृति विजय का स्वप्न देखते–देखते वह भूल गया कि मनुष्य भी प्रकृति पुत्र है, उसकी जिन्दगी का आधार नैसर्गिक वस्तुएँ हैं जिनकी गुणवत्ता बनाए रखना मानव मात्र का परम कर्तव्य है। हमारी भूल का प्रतिफल प्रदूषण, दैविय प्रकोप और सांस्कृतिक समस्याओं के रूप में प्रकट होने लगा है। कुछ संकट तो मानव अस्तित्व के लिए प्रश्नचिन्ह बनते जा रहे हैं। **ग्रीन हाउस प्रभाव** और **ओजोन क्षरण** ऐसे ही संकट हैं जो संपूर्ण जीव जगत को निवाला बनाने पर अमादा है।

आज जब पर्यावरण संतुलन लगभग बिगड़ चुका हैं तब नादान् मनुष्य संताप करने बैठा है। उसे क्या पता था कि वनों की लकड़ी काटते–काटते वह अपनी किस्मत पर भी कुल्हाड़ी चला रहा है। उसे क्या पता था कि कारखानों का दूषित जल नदियों और समुद्र में डालकर वह न केवल मछलियों और जल जंतुओं का ही जीवन समाप्त कर रहा है अपितु अपनी जीवन रेखा को भी छोटी करता जा रहा है। वायुमंडल को कार्बन डाई–ऑक्साइड से भरकर हवा की ताजगी को ही नष्ट कर रहा है। पर्यावरण की महत्ता अब मनुष्य की समझ में आई है और इसी महत्ता का दूसरा नाम है 'पर्यावरण शिक्षा'। मनुष्य और प्रकृति के सह–संबंधों को सही दिशा में विकसित करना ही पर्यावरण शिक्षा का अभीष्ट है।

पर्यावरण शिक्षा प्राचीन भारतीय शिक्षा संस्कृति का अभिन्न अंग रहा है। भारतवर्ष में प्रकृति और मनुष्य के बीच संतुलन सदियों–सहस्राब्दियों पुराना है। यहाँ मनुष्य और प्रकृति के बीच एक मीठा सा सह–संबंध रहा है। न तो मनुष्य ने प्रकृति के सौदंर्य के साथ छेड़छाड़ की और न ही उसे लूटने की तजबीज ही बिठाई, दूसरी तरफ प्रकृति ने भी दिल खोलकर उसे अपना प्यार, दुलार, ममता, सब कुछ दिया।

भारत में पर्यावरण संरक्षण की पंरपरा प्रारम्भ से ही रही है। हमारी संस्कृति में प्रकृति को देवी और देवता के रूप में स्वीकार किया गया है। आज भी भारत में बरगद, पीपल, ऑवला, तुलसी और नीम के वृक्षों की पूजा की जाती है। केले और आम के पत्तों को महत्व दिए बिना विवाह संस्कार तक शुभ नहीं समझे जाते हैं। यहॉ जलीय जीवों को चारा चुगाया जाता है तथा जीव–जन्तु हमारे उपासना के पात्र हैं। जहॉ शेर, मॉ दुर्गे का वाहन है तो वहीं हंस मॉ सरस्वती और उल्लू मॉ लक्ष्मी के वाहन के रूप में सुशोभित हैं। वेद, जिन्हें अरण्यक कहते हैं, इनकी रचना वनों में ही हुई थी। ये वनों में गाए गए गीत हैं। ऋषि–मुनियों ने वनों में ही तपस्या की थी। यज्ञ–हवन द्वारा वायु तथा वातावरण की शुद्धि करना भारतीय मनीषियों की दैनिक दिनचर्या में शामिल था। नदियॉ और पहाड़ हमारे आध्यात्मिक आस्था के केन्द्र बिन्दु हैं।

यों तो संसार में और भी कई दर्शन हैं, लेकिन वह भारतीय दर्शन ही है, जो सदा से प्रकृति के साथ आत्मीय संवाद का पक्षधर रहा है। विकास के नाम पर पर्यावरण असंतुलन का पक्षधर वह कभी नहीं रहा। आत्मीय संवाद से सृजनात्मकता आती है। सृजनात्मकता चरित्र को उज्ज्वल बनाती है और सच्चरित्र मनुष्य किसी का भी संहार या विनाश नहीं कर सकता, हमारे वेद इस तथ्य की पुष्टि करते हैं। भारतीय दार्शनिक परंपरा जनमानस में इस चेतना का संचार करता है कि उन्हें प्रकृति के साहचर्य में ही सुख मिल सकता है, अन्यत्र नहीं। मौन घाटी की शांति को बचाने के लिए केरलवासियों ने जो संघर्ष किया वह इसी भारतीय दर्शन की विचारधारा का परिणाम था। उत्तराखण्ड के सुसंस्कृत लेकिन गरीब लोगों ने जिस प्रकार 'चिपको आंदोलन' चलाया वह भी प्रकृति के साथ तादात्म्य की एक आधुनिक कथा है, जिसका पारायण हर प्रकृति प्रेमी करना चाहता है।

प्रकृति की गोद में जन्मी, पली–बढ़ी भारतीय दार्शनिक परंपरा हमें जीवन के उस परमानंद की ओर ले जाती है जो ''सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामया'' की पावन भावना से सराबोर है।

अध्ययन की दृष्टि से भारतीय दार्शनिक परम्परा में निहित पर्यावरण शिक्षा को दो पक्षों में रखा जा सकता है–

1. भौतिक एवं जैविक पर्यावरण से सम्बन्धित पर्यावरण शिक्षा।
2. सामाजिक एवं सांस्कृतिक पर्यावरण से सम्बन्धित पर्यावरण शिक्षा।

भौतिक पर्यावरण के अन्तर्गत जहाँ जल, वायु, मृदा आते हैं वहीं जैविक पर्यावरण में जीव–जगत व वनस्पति–जगत सन्निहित है। दूसरी तरफ सामाजिक पर्यावरण के अन्तर्गत व्यक्ति की जीवन शैली, रहन–सहन तथा उसके आचार–विचार आते है और सांस्कृतिक पर्यावरण में लोगों के संस्कार मान्यताएं व नैतिक मूल्य समाहित हैं।

भारतीय दर्शन में निहित पर्यावरणीय शिक्षा मूलतः सामाजिक एवं सांस्कृतिक पर्यावरण की शिक्षा से सम्बन्धित थी। सूक्ष्म अवलोकन किया जाय तो ज्ञात होगा भौतिक एवं जैविक पर्यावरण की आधारशिला वस्तुतः सामाजिक व सांस्कृतिक पर्यावरण पर ही टिकी होती है। व्यक्ति की जीवनशैली, आचार–विचार, संस्कार, मान्यताएं व मूल्य ही भौतिक एवं जैविक पर्यावरण में संतुलन या असंतुलन बनाये रखने के लिए उत्तरदायी होते है।

वेद संसार के प्राचीनतम ग्रंथ है। वेद चार है– ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद और सामवेद। सामान्यतः यह समझा जाता है कि वेद केवल धर्म और दर्शन के ग्रन्थ हैं परन्तु वास्तविकता यह है कि इनमें उस समय तक आर्यों द्वारा खोजा एवं विकसित समस्त ज्ञान–विज्ञान सूत्र रूप में संग्रहीत है। ऋग्वेद में यूँ तो ईश प्रार्थना और देवताओं की स्तुति सम्बन्धी मंत्र अधिक है परन्तु साथ ही सृष्टि, सृष्टिकर्ता, मानव जीवन के विभिन्न पक्ष, मानव जीवन के अन्तिम उद्देश्य और उस उद्देश्य को प्राप्त करने के साधनों की विषद व्याख्या की गई है। यजुर्वेद में भी ईश प्रार्थना और देवताओं की स्तुति और मानव जीवन के विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित मन्त्र हैं परन्तु साथ ही मनुष्य के करणीय तथा अकरणीय कर्मों तथा कर्मकाण्ड (पूजा–पाठ तथा विभिन्न प्रयोजन के लिए किए जाने वाले यज्ञों) की विषद व्याख्या की गई है। अथर्ववेद में भी ईश प्रार्थना, देवताओं की स्तुति एवं मानव जीवन के विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित मन्त्र हैं परन्तु इसमें मुख्य रूप से मनुष्य के लौकिक एवं पारलौकिक दोनों पक्षों से

सम्बन्धित ज्ञान–विज्ञान संग्रहीत है, शारीरिक स्वास्थ्य, गृहस्थ जीवन, कृषि एवं अन्य कला–कौशल (व्यवसाय) से सम्बन्धित ज्ञान संग्रहीत है। इसमें गणित से सम्बन्धित कुछ ऐसे सूत्र हैं जो आज के गणितज्ञों के लिए शोध का विषय बने हुए हैं। इतना ही नहीं अपितु जलपोत एवं वायुयान निर्माण सम्बन्धी विज्ञान भी संग्रहीत है। सामवेद में भी ईश प्रार्थना, देवताओं की स्तुति और मानव जीवन से सम्बन्धित मन्त्र है, परन्तु साथ ही वेद मन्त्रों के उच्चारण एवं गायन की विधि है, उन्हें वाणी में उतार–चढ़ाव के साथ कैसे गाया जाए, इसका विज्ञान संग्रहीत है और किस प्रकार के वेद मन्त्रों को गाने से मनुष्यों को क्या लाभ होते हैं, इनकी भी व्याख्या है।

मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन जन्म से लेकर मृत्यु तक विभिन्न संस्कारों से शुद्ध और पवित्र होता रहा है। संस्कारों को सम्पन्न किये बिना व्यक्ति का जीवन अपवित्र, अपूर्ण और अव्यवस्थित था। शरीर और आत्मा की शुद्धि और पवित्रता संस्कारों के संपादन से ही सम्भव थी। जीवन को विविध बाधाओं और विघ्नों से दूर रखना संस्कारों का मूल उद्देश्य रहा है। इन संस्कारों के करने में हवन और अग्नि की सर्वाधिक अपेक्षा की जाती रही है। जल में अभिषिंचन करते हुए पूर्वाभिमुख होकर प्रतीक रूप में शुभ की प्राप्ति और अशुभ के निवारणार्थ मंगलमय घड़ी में अपने को पूर्णरूपेण पूजन में संलग्न करते हुए संस्कार क्रियान्वित किये जाते थे। इस प्रकार वैयक्तिक जीवन को योग्य, गुणाढ्य, परिष्कृत और व्यवस्थित रूप प्रदान करने में संस्कारों का महत्वपूर्ण योग रहा है। अतः जीवन को मंगलकारी बनाने के लिए **सोलह संस्कारों** का विधान किया गया। बालक को आदर्श नागरिक बनाने हेतु जन्म के पूर्व से ही विशेष संस्कार संपादित किये जाते थे जो उसके लिए एक उत्कृष्ट सामाजिक व सांस्कृतिक पर्यावरण का सृजन करते थे। इनमें से कतिपय महत्वपूर्ण संस्कार अधोलिखित हैं–

- **गर्भाधान संस्कार**
- **पुंसवन संस्कार**
- **नामकरण संस्कार**
- **निष्क्रमण संस्कार**
- **अन्नप्राशन संस्कार**
- **उपनयन संस्कार**

यज्ञोपवीत संस्कार की कार्य–पद्धति के अन्तर्गत बालक को स्नान कराकर कौपीन (लँगोटी) धारण करने के लिए दी जाती थी। स्नान से उनका मन और शरीर शुद्ध होता था। आचार्य उसके कटि के चारों ओर मेखला बाँधता था तथा उसे उपवीत धारण करने के लिए दिया जाता था। आचार्य शिष्य को सावित्री मन्त्र के साथ उपदेश देता था। सावित्री मन्त्र बुद्धि और ज्ञान के उत्कर्ष का प्रमुख प्रेरक तत्व था, जिससे व्यक्ति आध्यात्मिक विकास करता था। ये कार्य सम्पादित कर दिये जाने के बाद विद्यार्थी को भिक्षा–याचना के लिए निर्देश दिया जाता था, जो उसकी *नम्रता और सदाचारिता* का प्रतीक था। साथ ही इससे यह भी स्पष्ट होता था कि विद्यार्थी सम्पूर्ण समाज पर आश्रित है।

हिन्दू समाज में जीवन को अनुशासित और बुद्धि संचालित बनाने में उपर्युक्त संस्कार विधानों का बहुत बड़ा योगदान था। इससे दायित्व–निर्वाह तथा निस्पृह और निर्लिप्त जीवन विकसित होता था। मनुष्य

की सामाजिक और शैक्षणिक उपलब्धियाँ इस संस्कार की सम्पन्नता के पश्चात् ही संभव थी। आज भी हिन्दू परिवारों में उपनयन संस्कार की वही महत्ता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि वैदिक दर्शन में पर्यावरण शिक्षा व्यक्ति के व्यवहार में ही परिलक्षित होती थी। संस्कारिक तथा संयमित नागरिक स्वमेव पर्यावरण का मित्र होता था।

सांख्य दर्शन वेदमूलक षट् दर्शनों में सबसे अधिक प्राचीन है। सांख्य दर्शन जगत् और जीवन पर विचार करता है। सांख्य दर्शन का सर्वप्रथम ग्रंथ *कपिलकृत 'सांख्य सूत्र'* है। कालान्तर में आकर ईश्वर कृष्ण ने 'सांख्यकारिका' नामक ग्रन्थ की रचना की। गौड़पाद ने इस दर्शन पर 'सांख्यकारिका भाष्य' नामक टीका लिखी। 850 ई0 के लगभग वाचस्पति मिश्र ने 'सांख्यतत्त्व कौमुदी' की रचना करके सांख्य दर्शन का विस्तृत विश्लेषण किया। 17वीं सदी में विज्ञानभिक्षु ने सांख्य मत पर दो पुस्तकें लिखीं, 'सांख्य–सार' और 'सांख्यप्रवचन भाष्य' ये दोनों ही ग्रन्थ सांख्य चिन्तन के विभिन्न पक्षों पर विचार करते हैं तथा इसके दर्शन–तत्त्व का आकलन करते हैं।

प्रकृति का विकास पुरुष के सहयोग से होता है। दोनों पारस्परिक सहयोग से विकसित होते है। इसी से सृष्टि होती हैः **'षड्ग्बन्धवदुभयोरपि संयोगस्तत्कृतः सर्गः'** (सांख्यकारिका, 21)। सर्वप्रथम चेतन के योग से प्रकृति में 'महद्' या बुद्धि उद्भूत होती है। फलस्वरूप *अहंकार* उत्पन्न होता है। यह अहंकार सत्वः, रज और तम तीनों रूपों में परिवर्तित होता है तथा यह सात्विक अंहकार, राजसी अहंकार और तामसी अहंकार कहा जाता है। विज्ञानभिक्षु ने इस पर भाष्य करते हुए लिखा है कि सात्विक अहंकार से मन, राजसी अहंकार से आँख, कान, हाथ, पैर, गुदा और लिंग नामक पाँ 'तन्मात्र' अर्थात संभाषण, स्पर्श, दृश्य, स्वाद और सूँघने के विषय– शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध के तत्व सम्मिलित हैं। सत्व, रज और तम तीनों प्रकार की प्रकृति में पुरुष चेतना का संचार करता है। अतः प्रकृति के विकास और परिणाम में चेतना के साथ सत्, रज और तम का महत्वपूर्ण योगदान है।

सांख्य दर्शन अहंकार के सात्वि, राजसी और तामसी तीनों रूप का वृहद दर्शन प्रस्तुत करते हुए यह अवधारित करता है कि जीवन मर्म को दुष्चरित से विरत हुए बिना नही समझा जा सकता।

योग दर्शन भारत की अपनी विशेषता है। इस दर्शन की सबसे बड़ी देन योग प्रक्रिया को वैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक रूप प्रदान करना है। वेद, ब्राह्मण और उपनिषदों में योग प्रक्रिया का विशिष्ट वर्णन है। जैन और बौद्ध साहित्यों में भी योग प्रक्रिया का विवेचन किया गया है। उमास्वामी ने 'तत्त्वार्थ सूत्र' और हेमचन्द्र ने 'योग सूत्र' में योग पर स्वतन्त्र रूप से विचार किया है। तन्त्रों में भी योग का स्थान है। गोरखनाथ का नाथ सम्प्रदाय भी योग प्रक्रिया पर आधारित है। इनका हठयोग भारत की भूमि पर खूब पनपा था। हठ योग की तरह भारत में 'मंत्र योग' और 'लय योग' भी कभी बड़े प्रसिद्ध रहे है। ज्ञान योग, कर्म योग और भक्ति योग तो भारतीय धर्म–दर्शन की आत्मा है। परन्तु योग को एक स्वतन्त्र दर्शन के रूप में प्रतिष्ठित करने का श्रेय *महर्षि पत×जलि* (ई0पू0 द्वितीय शताब्दी) को है। उनका *'योग सूत्र'* योग दर्शन का सर्वप्रथम प्रामाणिक ग्रन्थ है। पतंजिल के 'योग सूत्र' से योग दर्शन का उत्कर्ष हुआ। 'योगसूत्र' पर व्यास ने भाष्य लिखा जिस पर कालांतर में वाचस्पति मिश्र ने 'तत्त्ववैशारदी'' नामक टीका लिखा। तत्पश्चात् विज्ञानभिक्षु ने 'योगवार्त्तिक' और 'योगसंग्रह' नामक कृतियों की रचना की। सांख्य दर्शन में योगदर्शन के तत्ववाद को ही मार्जित और विकसित किया गया है।

योग दर्शन में *'चित्त'* को प्रधान मानते हुए विस्तृत व्याख्या की गई तथा यह माना गया कि मन, बुद्धि और अहंकार के सम्मिलित स्वरूप का नाम 'चित्त' है। आत्मा (पुरुष) की छाया से इसमें चेतनता आती है। इसकी पाँच वृत्तियाँ हैं, प्रमाण (समुचित ज्ञान), विपर्यय (मिथ्या ज्ञान), विकल्प (कल्पना), निद्रा (नींद) और स्मृति (स्मरण)। चित्त पर आत्मा की छाया रहती है इसलिए ऐसा लगता है कि ये वृत्तियाँ आत्मा की ही स्थितियाँ है, जो भ्रान्ति है। वस्तुतः ये भ्रान्तियाँ पाँच प्रकार से उत्पन्न होती है। अविद्या (अनित्य का नित्य समझना, गलत को सही मानना), अस्मिता (बुद्धि और अहंकार को आत्मा समझना), राग (सुख और उसके साधनों को प्राप्त करने की इच्छा), द्वेष (दुःख और उसके कारणों से शत्रुता) और अभिनिवेश (मृत्यु का भय)। इन भ्रान्तियों से मुक्त होने अथवा इनके दूर करने के लिए चित्त की वृत्यिों का निरोध आवश्यक है।

चित्त के निरोध की पाँच अवस्थाएँ है, जिन्हें 'चित्तभूमियाँ' कहते हैं : (1) क्षिप्त (इस स्थिति में चित्त अस्थिर रहता है तथा इधर–उधर दौड़ता है), (2) मूढ़ (इसमें आलस्य और निद्रा आती है तथा कुछ समय के लिए चित्त की वृत्तियाँ निढाल हो जाती है), (3) विक्षिप्त (इसमें एक समय में एक विषय पर चित्त टिकता है और पुनः उसे त्याग कर दूसरे पर चला जाता है) (4) एकाग्र (इसमें चित्त देर तक एक विषय पर लगा रहता है) और (5) निरूद्ध (इसमें चित्त विषय को छोड़कर पूर्णतः टिक जाता है)। इसके बाद भी दो भूमियाँ रहती हैं, सम्प्रज्ञात योग और असम्प्रज्ञात योग। सम्प्रज्ञात योग की चार श्रेणियाँ हैंः (1) सवितर्क (चित्त की स्थूल भौतिक वस्तु पर टिकाना), (2) सविचार (चित्त को उस स्थूल भौतिक वस्तु के सूक्ष्म रूप (तन्मात्र) परा लगाना), (4) आनन्द (चित्त को सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर विषय (जैसे इन्द्रिय) पर लगाना) और (4) सास्मित (चित्त केवल 'मैं' पर लग जाता है)। असम्प्रज्ञात योग 'निरोध' की अवस्था है।

योग के आठ अंग बताए गए हैंः *यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि।* यम के पाँच विभाग हैंः *अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, सत्य और अपरिग्रह।* नियम के भी पाँच भाग हैंः *शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर–प्रणिधान।*

इस तरह योग में नैतिक, शारीरिक और मानसिक क्रियाएँ सम्मिलित हैं, जिनसे मनुष्य की शक्ति और महत्ता बढ़ती है। इससे वह प्राणी समाज के लिए आदर्शमयी और कल्याणकारी पर्यावरण का सृजन करता है।

बौद्ध दर्शन की जन्मभूमि भारत है, यह बात दूसरी है कि उसका विकास भारत की अपेक्षा भारतेतर देशों–सिंहल, वर्मा, श्याम, जावा, तिब्बत, चीन, कोरिया, मंगोलिया और जापान में अधिक हुआ है। प्रारम्भ में यह मत भी एक धर्म के रूप में विकसित हुआ था। शाक्य गणाधिपति शुद्धोधन के पुत्र सिद्धार्थ (*गौतम बुद्ध*–567–487ई0पू0) इसके प्रतिपादक थे। अपनी छः वर्ष की कठिन तपस्या के बाद उन्होंने चार आर्य सत्यों की खोज की जिससे वे सिद्धार्थ से बुद्ध हो गए।

ऐसा उल्लेख मिलता है कि सिद्धार्थ वृद्ध, रोगी और मृतक को देखने से मनुष्यों के दुःखों से पीड़ित हो उठे थे और एक दिन राज्य, परिवार, पत्नी और पुत्र सभी को त्याग कर चल दिए थे। सबसे पहले वे भृगु आश्रम पहुँचे। उसके बाद आलार कालाम के पास गए और यहाँ से गया पहुँच कर तपस्या में लीन हो गए। यहाँ उन्हें चार आर्य सत्यों का ज्ञान हुआ। *ये चार आर्य सत्य हैं–*

1० जीवन दुःखों से पूर्ण (दुःखम्)

2. **इन दुःखों का कारण विद्यमान है (दुःख समुदाय)**
3. **इन दुःखों का अन्त सम्भव है (दुःख निरोधः अथवा निर्वाण)**
4. **इन दुःखों के अन्त का उपाय है (दुःख निरोध अथवा निर्वाण मार्ग)–** जीवन के मोह और अधिक प्राप्ति की तृष्णा से मुक्त होने के लिए उन्होंने *आर्य अष्टांग मार्ग* की खोज की। इस मार्ग के निम्नलिखित *आठ अंग* हैं–

1. सम्यक् दृष्टि (सम्मा दिष्टि
2. सम्यक् संकल्प (सम्मा संकल्प)
3. सम्यक् वचन (सम्मा वाचा)
4. सम्यक् कर्म (सम्मा कम्मा
5. सम्यक् जीव (सम्मा आजीव)
6. सम्यक् व्यायाम (सम्मा व्यायाम)
7. सम्यक् स्मृति (सम्मा मति)
8. सम्यक् समाधि (सम्मा समाधि)

आर्य अष्टांग मार्ग पर चलने हेतु शरीर शुद्धि पहली आवश्यकता है। शरीर शुद्धि के बौद्धदर्शन में तीन साधन बताए हैं– *शील, समाधि तथा प्रज्ञा।* इन्हें *त्रिरत्न* कहते है।

1. **शील–** शील का अर्थ है– सात्विक कर्म।
2. **समाधि–** समाधिक का अर्थ है चित्त का नैसर्गिक एकाग्रता।
3. **प्रज्ञा**

महायानी निर्वाण के लिए भक्ति को भी आवश्यक मानते हैं। इनके यहाँ सप्त विधि अनुत्तर पूजा (वन्दना, पूजा, पाप देशना, पुण्यान, मोदन, अध्येषणा, बोधिचिन्तोत्पाद तथा परिणामना) का विधान है। इनकी दृष्टि से इनके लिए नैतिक जीवन परमावश्यक है और नैतिक जीवन के लिए षट्पारामिताओं (दान, वीर्य, शील, शान्ति, ध्यान और प्रज्ञा) का अर्जन आवश्यक है।

इस प्रकार बौद्ध दर्शन नैतिक, चारित्रिक, संयमित, अनुशासित जीवन का आधार प्रस्तुत करता है जिससे प्रकृति से सामजस्य पूर्ण संव्यवहार तथा कल्याणकारी समाज की स्थापना संभव हो सकती है।

निष्कर्ष

अध्ययन में पाँच दर्शनों यथा– वैदिक दर्शन, वेदान्त दर्शन, सांख्य दर्शन, योग दर्शन तथा बौद्ध दर्शन को सम्मिलित किया गया है। भारतीय दार्शनिक परम्परा के अन्तर्गत लिये गए उक्त चयनित उक्त पाँचों दर्शनों के अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष निम्नवत् प्रस्तुत है–

वैदिक दर्शन में निहित पर्यावरणीय शिक्षा के तत्वों के अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष–

1. भौतिक तथा जैविक पर्यावरण का संतुलन तथा शुद्धता लोगों की सामाजिक तथा सांस्कृतिक पर्यावरण की पवित्रता और नैतिकता पर आश्रित थी।
2. मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन को आश्रम व्यवस्था के अन्तर्गत विशेष, अनुशासन, संयम और नियम के अधीन रखा गया था जो कल्याणकारी सामाजिक पर्यावरण की संरचना करता था।

3. मानव जीवन को पवित्र तथा व्यवस्थित बनाने के लिए 16 प्रकार के विभिन्न संस्कारों प्रमुखतः गर्भाधान संस्कार, पुंसवन संस्कार, सीमान्तोनयन संस्कार, नामकरण संस्कार, निष्क्रमण संस्कार, अन्नप्राशन तथा उपनयन संस्कार का विधान था।
4. नदियों, जलाशयों तथा पर्वतों को माता व देवी–देवताओं के रूप में पूजा जाता था। जल में वरूण देवता का वास माना गया तथा जल में मल–मूत्र का त्याग व थूकना पापकर्म समझा जाता था।
5. वृक्षों (पीपल, ऑवला, बरगद, तुलसी, केला, नीम, अशोक आदि) को देवी–देवताओं के रूप में तथा पशुओं (गाय, वृषभ, चूहा, शेर, हंस, नाग, मोर) को देवी–देवताओं के वाहन के रूप में वंदनीय स्वीकारा गया।
6. अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में कहा गया– ''हे! धरती माँ जो कुछ मैं तुमसे लूंगा, वह उतना ही होगा जिसे तू पुनः पैदा कर सके। तेरे मर्मस्थल पर या तेरी जीवन–शक्ति पर कभी आघात नही करूँगा।''
7. वैदिक मंत्रों में सम्पूर्ण जगत के लिए कल्याण एवं शान्ति की कामना की गई है।

वेदान्त दर्शन के अन्तर्गत पर्यावरणीय शिक्षा के तत्वों का अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष–

1. नैतिक आचरण की शुद्धता एवं पवित्रता पर अत्यधिक बल दिया गया।
2. ज्ञान की प्राप्त जिन तत्वों से होती है वे पुण्य हैं। इसके विपरीत जो ज्ञान की प्राप्ति में बाधा है वे पाप हैं।
3. सत्य, अहिंसा, दया, परोपकार, पुण्यकर्म है तथा असत्य, हिंसा, बर्बरता आदि पाप है।
4. एकता का भाव वेदान्त दर्शन की विशेषता है। समस्त पदार्थ ब्रह्म के रूप में है जो सत्ता और चैतन्य की एकाग्रता के परिचायक है।

सांख्य दर्शन में निहित पर्यावरणीय शिक्षा के तत्वों के अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष–

1. जगत् का मूल प्रकृति को माना गया है जिसके तीन भाग कहे गए है– सत्, रज और तम।
2. प्राकृतिक विकास में सत्, रज और तम का महत्वपूर्ण योगदान है।
3. अहंकार के सात्विक, राजसी और तामसी रूपों की व्याख्या की गई है तथा स्पष्ट किया गया है कि जीवन मर्म को दुष्चरित्र से विरत हुए बिना नहीं समझा जा सकता।

योग दर्शन में निहित पर्यावरणीय शिक्षा के तत्वों के अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष–

1. योग दर्शन में चित्त को प्रधान माना गया है। मन, बुद्धि और अहंकार के सम्मिलित रूप को चित्त का नाम दिया गया है। चित्त के निरोध की पाँच अवस्थाएं है– क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरूद्ध।
2. योग के आठ अंग बताए गए हैं– यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। इन अंगों के कई विभाग है जिसमें– सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, संतोष, महत्वपूर्ण है जो चरित्रवान् एवं सबल नागरिक के निर्माण का मार्ग प्रशस्त करती है।
3. योग में नैतिक, शारीरिक और मानसिक क्रियाएँ सम्मिलित है जिनसे मनुष्य की शक्ति और महत्ता बढ़ती है तथा एक संतुलित व्यक्तिगत व सामाजिक पर्यावरण का निर्माण संभव हो पाता है।

बौद्ध दर्शन में निहित पर्यावरणीय शिक्षा के तत्वों के अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष–

1. जीवन के चार आर्य सत्य है– दुःखम्, दुःख समुदाय, दुःख निरोधः तथा दुःख निर्वाण मार्ग।

2. मानव जीवन के दुःखों के अंत हेतु आर्य अष्टांग मार्ग बताए गए हैं– सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वचन, सम्यक् कर्म, सम्यक् जीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति, सम्यक् समाधि।
3. शरीर शुद्धि के बौद्ध दर्शन में तीन साधन बताए गए हैं– शील, समाधि, पूजा।
4. महायानी निर्वाण के लिए भक्ति को आवश्यक मानते हैं। इनके अनुसार नैतिक जीवन परमावश्यक है नैतिक जीवन के लिए षट्पारामिताओं (दान, वीर्य, शील, शान्ति, ध्यान और प्रज्ञा) का अर्जन आवश्यक है।

अन्ततः यह अवधारित किया जा सकता है कि भारतीय ऐतिहासिक दार्शनिक परम्परा में निहित पर्यावरणीय शिक्षा उच्च नैतिक मूल्यों, आचरण की शुद्धता, अनुशासित व संयमित जीवन, संतोष, सत्य, अहिंसा तथा प्रकृति के साथ सह–सामांजस्य से परिपूर्ण थी जिनका अनुपालन वर्तमान परिवेश में पर्यावरण संरक्षण हेतु अपरिहार्य है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. पाण्डेय, आर0एस0 (1983), 'शिक्षा दर्शन'', विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा–2
2. शर्मा, बी0एल0, (1991), ''पर्यावरण नियोजन एवं परिस्थितिकी विकास'', आगरा, साहित्य भवन।
3. शर्मा, चंदधर, (1991), ''भारतीय दर्शन– आलोचन और अनुशीलन'', दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स प्रा0लि0।
4. गोपाल, कृष्णन सरोजिनी (1992), इम्पैक्ट ऑफ एन्वयर्मेन्टल एजुकेशन ऑन प्राइमरी स्कूल चिल्ड्रेन'', अविनाशिलिंगम इस्टीट्यूट फार होम साइंस एण्ड हायर एजुकेशन फार वुमेन, बुच सर्वे, भाग–2, पेज–1754
5. सिंह, बी0एन0, (1994), ''भारतीय दर्शन'', वाराणसी–5, स्टूडेण्ट्स फेण्ड्स एण्ड कंपनी।
6. दत्ता एवं चटर्जी (1994), भारतीय दर्शन पटना, पुस्तक भण्डार पब्लिशिंग हाउस।
7. ग्रेवाल एवं राजपूत (1998), ''ए कम्परेटिव स्टडी ऑफ एन्वायमेन्टल एटीट्यूड ऑफ मिडिल स्टेज'', भोपाल रीजनल कालेज ऑफ एजुकेशन।
8. श्रीवास्तव, वी0के0, (2001), ''पर्यावरण और पारिस्थितिकी'', गोरखपुर वसुन्धरा प्रकाशन।
9. पाण्डेय, आर0एस0, (2003), ''भारतीय शिक्षा की समसामायिक समस्याएँ'', आगरा–2, विनोद पुस्तक मंदिर।
10. पाण्डेय, प्रो0 पिवजय कुमार, (2003), ''भारतीय संस्कृति और कला'', इलाहाबाद, साहित्य संगम।
11. शर्मा, एच.एल. (2003), ''पर्यावरण के समसामयिक आयाम'', राज पब्लिशिंग हाउस।
12. सलूजा, अनूजा, (2004), ''एजूकेशन एनवायरनमेंट'', नई दिल्ली, किलासो बुक।
13. व्यास, हरिश्चन्द्र, (2004), ''पर्यावरण शिक्षा'', नई दिल्ली, विद्या विहार।
14. राज, शालिनी, (2004), ''टीचिंग ऑफ एनवायरनमेंट एजूकेशन'', नई दिल्ली, आई0वी0पी0 पब्लिशिंग।
15. अवस्थी, नरेन्द्र मोहन, (2004–05), ''पर्यावरणीय अध्ययन'', आगरा–2, संजय पैलेस।

16. दूबे, एच0एन0, (2009), ''भारतीय संस्कृति'', इलाहाबाद शारदा पुस्तक भवन।